

नियमसार, ६५वाँ श्लोक है। ६५ वाँ श्लोक।

भवजभोगपराङ्मुख हे यते पदमिदं भवहेतुविनाशनम्।

भज निजात्मनिमग्नमते पुनस्तव किमध्रुववस्तुनि चिन्तया ॥६५॥

आहाहा! यति की अपेक्षा से (बात की है)। स्वयं मुनि है न? मुनि की अपेक्षा से बात करते हैं। निज आत्मा में लीन बुद्धिवाले... प्रभु! तू तो निज आत्मा में लीन बुद्धिवाला है न! आहाहा! तेरा वैभव और तेरी सम्पत्ति तो तुझमें पड़ी है न, प्रभु! निज आत्मा में लीन बुद्धिवाले तथा भव से और भोग से... भव से और भोग से... आहाहा! चार गति और भोग, दोनों से जो विरक्त है। पराङ्मुख हुए... हैं। भव ही नहीं। आत्मा में भव नहीं, आत्मा में पर का भोग नहीं।

हे मुनि! यह स्वयं को कहते हैं। हे यति! तू भव... और भोग के दुःख से तो पराङ्मुख हुए यति। उनसे तो तो पराङ्मुख है। आहाहा! तू भवहेतु का विनाश करनेवाले,...

चौरासी के अवतार के भव का विनाश करनेवाले ऐसे इस (ध्रुव) पद को भज;... आहाहा! चार गति और चौरासी लाख अवतार का नाश करनेवाला ध्रुव भगवान... आहाहा! ध्रुव को भज! सूक्ष्म बात है, प्रभु! अनन्त काल से ध्रुव पर लक्ष्य गया ही नहीं। सब कल्पनाएँ पर्याय पर रही और यह त्याग किया, यह छोड़ा, यह रखा और यह लिया, यह दिया। यह सब अपनी पर्याय में मनोमन्थन / कोलाहल कर चुका है। प्रभु! परन्तु तू अन्दर अनादि-अनन्त ध्रुव चीज़ है न! चँवरेजी आये नहीं? आहाहा!

तू भवहेतु का विनाश करनेवाले,... चार गति का नाश करनेवाले, ऐसे इस (ध्रुव)... आहाहा! (ध्रुव) पद को भज;... आहाहा! भज, यह साधन है। भजन की साध्यवस्तु है, वह ध्रुव है। समयसार की १६वीं गाथा में कहा है कि 'दंसणणाणचरिताणि सेविदव्वाणि' यह सेवना और यह साधन। यह साधन और साध्य आत्मा का भेद है। आहाहा! क्या कहा? आत्मा, वह साध्य है और साधन भी उसका दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वही भाव है। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र साधन। 'दंसणणाणचरिताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं। ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव' परन्तु वह दर्शन-ज्ञान-चारित्र को सेवन कर, किन्तु वस्तु तो एक है। वह साधनरूप से दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय कहा। निश्चय, हों! निश्चय साधन। आहाहा! व्यवहार के विकल्प की बात है ही नहीं। वहाँ तो 'दंसणणाणचरिताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं। ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव' एक है। आहाहा! दर्शन, ज्ञान और चारित्र का सेवन, वह भी साधक को व्यवहार हुआ। आहाहा!

अन्दर भगवान ध्रुव, वही निश्चय है। उसमें तीन की एकता करके उसकी सेवा कर। आहाहा! अब ऐसा मार्ग। उसे भज-ध्रुव को भज। भज, यह दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय है। निश्चय, हों! व्यवहार नहीं। आहाहा! निश्चय सम्यक् निर्विकल्प अपने आत्मा की प्रतीति और वेदन, ज्ञान और चारित्र, ये निश्चय तीनों साधक हैं। एक ही चीज़ में साधक-साध्य दो है। चीज़ एक ही है। राग के साथ कोई सम्बन्ध नहीं, ऐसा कहा है। द्रव्य में साधन कहना वह तो दर्शन, ज्ञान और चारित्र। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र साधन। साध्य ध्रुव... आहाहा! मार्ग ऐसा है। इन तीन की सेवना में एकरूप की सेवना कर। आहाहा! तीन के भेद के लक्ष्य को भी छोड़ दे। आहाहा!

निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान को भी 'सेविदव्वाणि साहुणा' कहा है। यह व्यवहारी

लोग पर्याय से समझते हैं, इस कारण ऐसी भाषा ली है। ऐसा लिखा है अन्दर पर्यायवाले इस पर्याय से समझते हैं। पर्यायदृष्टिवाले इस प्रकार से समझते हैं, इसलिए तीन से हमने बात की है, प्रभु! बाकी सेवन तो एक आत्मा का ही करना है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! क्या कहा?

यहाँ कहते हैं कि हे यति!... स्वयं, स्वयं को कहते हैं। भगवान आत्मा भगवान को कहता है। हे यति!.. भव और भव से पराङ्गमुख। प्रभु! तू भव और भोग से तो पराङ्गमुख है न, नाथ! तू भवहेतु का विनाश करनेवाले,... भव के हेतु का विनाश करनेवाले ऐसे इस (ध्रुव) पद को भज;... आहाहा! भज, यह पर्याय है और भजन के ध्येय में ध्रुव है। यह समयसार की १६वीं गाथा में कहा है। 'दंसणणाणचरिताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।' हे मुनि! अन्तर निश्चय सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन-जिसके ध्येय का ध्रुव, अनन्त आनन्द का भण्डार ऐसा सम्यग्दर्शन, ऐसा उसका ध्येय ध्रुव; ऐसा सम्यग्ज्ञान, उसका ध्येय ध्रुव; ऐसा सम्यक्चारित्र, उसका भी ध्येय ध्रुव। 'दंसणणाणचरिताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।' १६वीं गाथा हैं। सन्तों को तो नित्य यह सेवना करना। निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह साधन है। निश्चयकरण अर्थात् साधन गुण तो आत्मा में है। त्रिकाली भगवान में प्रभु, करण नाम का गुण तो अन्दर है। कर्ता, कर्म, करण, यह त्रिकाल गुण है। परन्तु इनका बाह्य जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, वह साधन बाह्य साधन है। रागादि नहीं। आहाहा!

मुनि स्वयं अपने को कहते हैं, हे प्रभु! भव और भोग का नाश करनेवाले... आहाहा! और भवहेतु का विनाश करनेवाले, ऐसे इस (ध्रुव) पद को भज;... आहाहा! पर्याय को भज, भगवान को भज - ऐसा नहीं कहा। पर्याय को भज, ऐसा भी नहीं कहा। आहाहा! पर्याय पर लक्ष्य जायेगा तो, नाथ! प्रभु! तुझे विकल्प होगा। अन्तर चीज जो ध्रुव है, जो अनन्त अक्षय आनन्दादि गुणों के भण्डार की खान है। आहाहा! ऐसा भव के नाश हेतु, प्रभु! तू ध्रुव को भज। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! ऐसी कठिन बात लगे। दूसरा क्या हो? प्रभु! मार्ग तो यह है। आहाहा!

वे स्वयं अपने लिये कहते हैं। पोते अर्थात् अपने। पोते, यह हमारी गुजराती भाषा है। स्वयं अपने को कहते हैं। आहाहा! भगवन्त! भव के और भोग के भाव से, प्रभु! तू विरक्त हो। अतः भव के हेतु का नाश करने के लिये, प्रभु! ध्रुव को भज। आहाहा!

चिदानन्द ध्रुव अनन्त-अनन्त रत्न का चैतन्य रत्नाकर का भण्डार, उस पर दृष्टि दे, वहाँ भजन कर। आहाहा! कठिन लगे परन्तु मार्ग तो यह है, प्रभु! अनन्त काल हुआ, चौरासी के अवतार (किये), एक-एक अवतार में अनन्त अवतार किये, वे सब मिथ्यात्वभाव (के कारण से किये हैं)। उस मिथ्यात्व के असंख्य प्रकार, सूक्ष्म अनन्त प्रकार हैं। उनमें से कुछ भी अन्दर शल्य रह गयी.. आहाहा! चैतन्य ध्रुव को पकड़ने का भाव नहीं किया और दूसरे भाव में रुक गया। भव का नाश हुआ नहीं, प्रभु! आहाहा! भाषा तो कितनी मीठी है। आहाहा!

हे यति!.. हे यत्ना करनेवाले, स्वरूप का यत्न करनेवाले! स्वरूप की यत्ना करनेवाले। राग की नहीं, शरीर परवस्तु तो उसके कारण से (होती है)। शरीर की पर्याय तो उसके काल में, उसके कारण से क्रमबद्ध होनेवाली होगी, वह होगी। राग भी क्रमबद्ध काल में आनेवाला होगा, वह आयेगा। परन्तु तेरा लक्ष्य उस पर से छोड़ दे। आहाहा! अरागी और अशरीरी। राग और शरीर के ऊपर से लक्ष्य छोड़ दे और अरागी और अशरीरी भगवान... आहाहा! उसका भजन कर। आहाहा!

अध्रुववस्तु की चिन्ता से तुझे क्या प्रयोजन है? आहाहा! इस विकल्प से, दया, दान और व्रत के विकल्प से (क्या प्रयोजन है)? आहाहा! वह तो अध्रुव है, प्रभु! अध्रुव वस्तु की चिन्ता, उसके विकल्प में रुकना, प्रभु! उसमें क्या है?

मुमुक्षु : पैसा ध्रुव है या अध्रुव है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे की तो बात ही कहाँ है, प्रभु! यहाँ तो पैसे की बात ही नहीं। बहुत कड़क भाषा से कहें तो पण्डितजी ने लिखा है कि पैसा तो पुण्य से मिलता है, परन्तु पैसेवाले पापी हैं। आहाहा! क्यों? कि त्रिलोकनाथ भगवान ने चौबीस प्रकार के परिग्रह कहे हैं। चौदह प्रकार के परिग्रह तो अपने यहाँ आ गये और दस प्रकार के परिग्रह यहाँ कहते हैं। क्षेत्र, मकान, चाँदी, सोना, धन-धान्य, दासी-दास, वस्त्र, बर्तन—ऐसे दस प्रकार के बाह्य परिग्रह हैं। एक मिथ्यात्व, चार कषाय और नौ नोकषाय, ऐसे चौदह प्रकार के अभ्यन्तर परिग्रह हैं। आहाहा! ये चौदह प्रकार के अभ्यन्तर परिग्रह, दस प्रकार के बाह्य परिग्रह, परिग्रह है, परचीज़ है। तेरा लक्ष्य उन पर जायेगा तो तुझे पाप लगेगा। अध्रुव की तुझे क्या चिन्ता है? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह तो पैसा जरा पाँच-पचास लाख मिले, मानो अन्दर घुस गया। मानो कैसा मकान बनाया! ऐसा बनाया... ऐसा बनाया... मकान के वास्तु में कार्यकरों (अतिथियों को) बुलावे, कार्यकरों बड़े अधिकारियों को बुलावे। वे आवे तो अपने मकान की वास्तु की शोभा बढ़े। आहाहा! प्रभु! तेरा घर तो यह है न, नाथ! तेरी पर्याय को वहाँ अन्दर में बुला न! वह कार्यकर्ता तो पर्याय है। ये दुनिया के कार्यकर्ता हैं, वे तो सब पाप के करनेवाले हैं। रजनीभाई! इसने बहुत तूफान किया है। बहुत पैसा इकट्ठा (किया)। कितने लाखों खर्च करके यात्रा निकाली थी। यह और वह दूसरा कौन तुम्हारे? कान्तिभाई। कान्तिभाई और ये दोनों ने शत्रुंजय की बड़ी यात्रा निकाली थी। उसमें मानो धर्म हो गया। रजनीभाई! ऐसा हुआ था न? कुछ धर्म नहीं, हों! प्रभु! उसमें कर्ताबुद्धि है तो मिथ्यात्व है, महापाप है। कर्ताबुद्धि से मैंने किया, मैंने पैसे खर्च किये और हलन-चलन मैंने किया और वाणी का मैं कर्ता हुआ तो स्तुति हुई, प्रभु! आहाहा! वहाँ तो एकान्त मिथ्यात्व का पाप है।

भगवान! मिथ्यात्व किसे कहते हैं? यह समझने की सूक्ष्म बात है, प्रभु! आहाहा! बाह्य में परिग्रह आये न? इस ओर। धन और वह आया। धन, धान्य। नीचे इस ओर परिग्रह (की बात) है न? दूसरी ओर। वह परिग्रह है। परिग्रह तो पाप है। वास्तव में तो बाह्य परिग्रह पाप का निमित्त है। पाप तो अन्तर में मिथ्यात्व (अर्थात्) ये पैसे मेरे हैं, लक्ष्मी मेरी है और मैं सदाचार में प्रयोग करता हूँ, ऐसी कर्तापने की बुद्धि और ये पैसे मेरे हैं, ऐसी बुद्धि, प्रभु! क्या कहें? परमात्मा का पुकार है। हे प्रभु! तू कर्ताबुद्धि में जाता है, हों! वह तुझे नुकसान करती है और तू मान बैठा है कि उसमें मुझे लाभ होगा। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं (ध्रुव) पद को भज;... नाथ! अध्रुववस्तु की चिन्ता से तुझे क्या प्रयोजन है? ६५वाँ श्लोक। आहाहा! अध्रुव जो चिन्ता, विकल्प, राग, पैसा-लक्ष्मी, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, भव-भोग सब अध्रुव है। उस अध्रुव की चिन्ता से तुझे क्या प्रयोजन है? अध्रुव की चिन्ता से तो, प्रभु! तुझे भटकना पड़ेगा। किस गति में और कहाँ जायेगा? नाथ! आहाहा! और वहाँ से फिर मनुष्यपना कैसे मिलेगा? अनन्त काल में मिला है, उसमें ध्रुव का ध्यान करके ध्रुव को जगाया नहीं। आहाहा! और क्रिया में रुक गया। बहिन आयीं। समझ में आया? आहाहा!

मुनिराज कहते हैं, पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि (कहते हैं) तुझे अध्रुव की क्या चिन्ता है? प्रभु! अध्रुव से तुझे क्या है? अध्रुव में राग, पुण्य, दया, दान भी अध्रुव में आ गये।

आहाहा! बात कठिन पड़े, प्रभु! परन्तु यह करने से ही छुटकारा है, ऐसा निर्णय करना, हों! ऐसा निर्णय तो पहले करना। पहले निर्णय तो यह करना कि यही करने योग्य है, बाकी दूसरी कोई चीज़ करने योग्य नहीं है। आहाहा! एक शुभराग का विकल्प, उसका कर्ता होगा, चैतन्यनाथ को कर्तापना सौंपना... आहाहा! चक्रवर्ती ने पाँच-दस करोड़ का मकान लिया, उसमें धूल जमी हुई थी। दो-चार महीने से किसी ने निकाली नहीं। चक्रवर्ती को सौंपे कि तुम धूल निकालो (साफ करो), आहाहा! तुम यह साफ करो। इसी प्रकार भगवान तीन लोक के नाथ के समक्ष राग का कर्तापना सौंपना, वैसा है। आहाहा! कठिन पड़े, प्रभु!

यह सूझ पड़ती नहीं, उसका कर्तापना और जो सूझ-बूझ में आवे, उसका कर्तापना तो मिथ्यात्व है। आहाहा! वह चीज़ सूझ-बूझ में आती नहीं, उसे अकर्तापने का लाभ और उससे विरुद्ध जो अध्रुव चिन्ता, उसके कर्तापने का लाभ मिथ्यात्व। और ध्रुव चीज़ के कर्तापने का लाभ सम्यक्त्व (है)। तो हे प्रभु! भव, भोग के नाश के लिये एक बार अध्रुव की चिन्ता तो छोड़ और ध्रुव का तो भजन कर, प्रभु! आहा! यह ६५ में आया।



श्लोक-६६

(द्रुतविलंबित)

समयसारमनाकुलमच्युतं जननमृत्युरुजादिविवर्जितम् ।
सहज-निर्मल-शर्म-सुधामयं समरसेन सदा परिपूजये ॥६६॥

(वीरछन्द)

अच्युत और अनाकुल जन्म मृत्यु रोगादिक रहित सदा ।
निर्मल सहज सुखामृत सार समय समरस से भजँ सदा ॥६६॥

श्लोकार्थः—जो अनाकुल है, अच्युत* है, जन्म-मृत्यु-रोगादिरहित है, सहज निर्मल सुखामृतमय है, उस समयसार को मैं समरस (समताभाव) द्वारा सदा पूजता हूँ ॥६६॥

* अच्युत=अस्खलित; निजस्वरूप से न हटा हुआ।

श्लोक-६६ पर प्रवचन

अब ६६ वाँ श्लोक ।

समयसारमनाकुलमच्युतं जननमृत्युरुजादिविवर्जितम् ।

सहज-निर्मल-शर्म-सुधामयं समरसेन सदा परिपूजये ॥६६॥

श्लोकार्थः—जो अनाकुल है,... भगवान आत्मा में आकुलता की गन्ध नहीं है । आहाहा ! जो अनाकुल का सागर भरा है । अनाकुल अर्थात् सुख, अनाकुल अर्थात् सुख; आकुलता अर्थात् दुःख । आहाहा ! तू तो अनाकुल है न नाथ ! आहाहा ! तू बाहर के सुख के लिये झपट्टे मारता है । यहाँ से सुख मिलेगा, यहाँ से आकुलता होगी, यहाँ से सुविधाएँ मिलेंगी, प्रभु ! बाहर में कहीं सुविधा नहीं है । आहाहा ! सुविधा अर्थात् कि शुद्ध ध्रुव का ज्ञान, वह सुविधा है कि जिस सुविधा से ध्रुव में से आनन्द का अनुभव आता है । आहाहा ! बाकी पैसा, करोड़ों के मकान...

हम एक बार गये थे न, मैसूर गये थे । साढ़े तीन करोड़ का दरबार का मकान था । उस मैसूर का जो दरबार था, उसका रहने का साढ़े तीन करोड़ का एक । किन्तु बाद में तो सरकार ने ले लिया । वह बँगला भी ले लिया । अब सरकार ने बँगला भी ले लिया । अब साढ़े तीन करोड़ के खाली मकान में आवे कौन ? खाली पड़ा है । लोग देखने आते हैं । साढ़े तीन करोड़ का एक मकान । धूल में भी है नहीं । आहाहा ! चिन्ता का पार नहीं होता । उसे सम्हालने के लिये... आहाहा !

वहाँ गये थे न ? अफ्रीका । बड़े गृहस्थ थे । जिस मकान में उतरे थे, वह मकान पन्द्रह लाख का । जिस मकान में उतरे थे वह । उसके अतिरिक्त दूसरे पैसे, परन्तु अन्दर में हबसी का डर । हबसी लोगों का इतना डर कि बाहर निकलने में बहुत विचार करे और रहने के स्थल में त्रिपट्टी आड़ डाले । बण्डी, त्रिपट्टी बण्डी । आहाहा ! अब यह सुख ! अध्रुव की चिन्ता से, प्रभु ! तुझे क्या लाभ है ? आहाहा ! वह व्यक्ति बेचारा नरम था । पन्द्रह लाख का मकान । करोड़पति होगा परन्तु बहुत नरम । ऐसे लौकिक दिखाव कुछ नहीं होता । गाँव का व्यक्ति हो, वैसा साधारण । ऐसी चमड़ी, ऐसी बोली और ऐसा परिवेश, परन्तु पुण्य के कारण वहाँ... वह तो कहता था कि कुछ पचास या बाबन वर्ष से हम यहाँ

है। देश में आये ही नहीं। वहीं के वहीं पड़े होंगे। वहीं के वहीं पैसे हो गये। उसमें क्या हुआ ?

यहाँ कहते हैं, तू अनाकुल है न, नाथ! **अच्युत है,.... अस्खलित; निजस्वरूप से न हटा हुआ।** प्रभु! तेरे ऊपर अनन्त-अनन्त काल बीता, पर कभी स्खलित नहीं हुआ। ध्रुव में से स्खलित नहीं हुआ। आहाहा! वहाँ से जरा पलटा खाकर पर्याय में नहीं आया। ध्रुव तो ध्रुवरूप ही रहता है। उसे अच्युत कहते हैं। प्रभु! तू **अच्युत है, है न? जन्म-मृत्यु-रोगादिरहित है,.... ओहोहो!** प्रभु! तू अन्दर में आनन्दकन्द है। **जन्म-मृत्यु-रोगादिरहित है,....** आत्मा में कोई जन्म-मृत्यु-रोग ही नहीं है।

सहज निर्मल सुखामृतमय है,.... स्वाभाविक निर्मल सुखामृत। सुखरूपी अमृत का खजाना है। अरे! प्रभु! तुझे उसकी महिमा न आवे और बाह्य की किसी चीज़ में महिमा रह जाये, भवभ्रमण नहीं टलेगा, प्रभु! भवभ्रमण नहीं टलेगा। भवभ्रमण मिटाने का उपाय तो ध्रुव का आश्रय लेना, वह एक ही है, उसके भजन में एकाग्र होना और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निर्विकल्प, उनकी सेवना करना, यह एक ही भव का अभाव करने का कारण है। आहाहा! व्यवहार चाहे जो आवे। व्यवहार है, व्यवहार के स्थान में व्यवहार होता है परन्तु वह कहीं आत्मा को लाभदायक नहीं है। आहाहा!

१६वीं गाथा में तो ऐसा कहा, अन्दर दर्शन-ज्ञान और चारित्र जो निर्मल निश्चय प्रगटे, उसे भी साधक कहते हैं। रागादि, निमित्तादि तो साधन नहीं, त्रिकाली भगवान ध्रुव में **‘दंसणणाणचरिताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।’** साधु को तो नित्य अन्तर्मुख, सन्मुख, दर्शन-ज्ञान-चारित्र, ध्रुव की सन्मुखता की दृष्टि, ज्ञान और चारित्र से उसकी सेवना करना। यह तीनों एक ही आत्मा है। दृष्टि तो द्रव्य पर रखना। सेवना करना, वह पर्यायबुद्धि से तुझे समझाते हैं। दर्शन-ज्ञान और चारित्र ये तीन बोल निश्चय हैं। आहाहा! वह भी तू व्यवहार में (खड़ा) है, तो पर्यायबुद्धि से तुझे समझाते हैं परन्तु वह पर्याय भी तेरे लक्ष्य में रखनेयोग्य नहीं है। आहाहा! पर्याय की स्थिति तो प्रभु! एक समय की है न! अन्दर भगवान पूरा ध्रुव अनादि-अनन्त, एकरूप पूर्णानन्द का नाथ.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त गुण का भण्डार.. बाहर में बहुत धीरज की, परन्तु जहाँ जीव में धीरज करनी थी, वहाँ तूने धीरज नहीं की। आहाहा!

वैसे तो चमड़ी उतारकर नमक छिड़के तो क्रोध नहीं किया, परन्तु वह सब

परलक्ष्यी। अन्दर चैतन्य भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, उस ओर का झुकाव, ढलाव, सन्मुखता कभी नहीं की। आहाहा! और इसके अतिरिक्त बाहर की चीज़ में सन्तुष्ट हो गया। हम कुछ करते हैं.. कुछ करते हैं.. बाहर में सन्तुष्ट हो जाये, उसे अन्दर जाने की दरकार नहीं रहती। आहाहा! ऐसी बात है। रजनीभाई! बड़ी यात्रा-वात्रा निकाली थी, उसमें कुछ धर्म नहीं था। कितने पैसे खर्च किये थे इसने। वह कान्तिभाई साथ में।

मुमुक्षु : उस समय ख्याल नहीं था, खबर नहीं थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची है। यह मानो कि उसमें से (लाभ होगा)। बड़ी यात्रा निकाले, लाख-दो लाख लोगों का बड़ा संघ निकाले, प्रभु! वह सब अध्रुव चीज़ है, नाथ! एक भगवान आत्मा ध्रुव को भूलकर सब चिन्ता निरर्थक है। आहाहा! सार्थक! निरर्थक के सामने सार्थक एक ध्रुव प्रभु वही सार्थक है। उस ओर का ढलान, झुकाव, वही धर्म है। ऐसा प्रभु! निर्णय तो कर। इस निर्णय में ऐसा निर्णय कर कि निर्णय कभी बदले नहीं। आहाहा! वह निर्णय पूर्ण फल लाकर ही रहे। आहाहा! उस ध्रुव में से केवलज्ञान आयेगा। इसे निर्णय हो गया है कि इस ध्रुव को मैंने पकड़ा है, इसमें से केवलज्ञान आये। मुझे अवश्य केवलज्ञान होगा। उस केवलज्ञान के लिये राह देखनी पड़े या सन्देह होगा, ऐसा है नहीं। आहाहा!

उस समयसार को... क्या कहा? आत्मा अनाकुल है, अच्युत है, (स्खलित नहीं)। जन्म-मृत्यु-रोगादिरहित है, सहज निर्मल सुखामृतमय है, उस समयसार को... वह आत्मा। समयसार कहो या आत्मा कहो। आहाहा! उस समयसार को... है न? मैं समरस (समताभाव) द्वारा सदा पूजता हूँ। वीतरागभाव द्वारा सदा ध्रुव का पूजन करता हूँ। आहाहा! समझ में आया?

आहार के समय वहाँ लोग बहुत आते हैं न, भाई? आहार लेते समय। उन्हें बाहर निकालना। डॉक्टर की मनाही है कि अधिक लोगों का श्वास नहीं लेना। अन्दर शरीर में रोग है। शरीर बाहर से सुन्दर दिखता है परन्तु अन्दर खून में कैंसर है। आहाहा! इस कारण से डॉक्टर ने कहा है कि अधिक लोगों के बीच रहना नहीं, उनका श्वास अन्दर जायेगा तो चेप लगता है। यह तो एक बनने की चीज़ होगी तो बनेगी। लोगों को बाहर निकाले तो किसी को दुःख लगे। अन्दर आवे और कहे कि बाहर निकलो। (आहार) देकर निकल जाओ.. निकल जाओ, ऐसा कहे तो किसी को दुःख लगे। उसका कारण तो प्रभु! यह है। क्या करें? आहाहा! शरीर सुन्दर दिखता है, खून में कैंसर है। पाँच-छह वर्ष से है

परन्तु बाहर में दिखता नहीं। कुछ दिखता नहीं। उसका कोई बाह्य चिह्न नहीं है। वह डॉक्टर को ख्याल आया कि अन्दर है। है, उसकी बाहर में खबर नहीं पड़ती, परन्तु अधिक लोगों के बीच नहीं बैठना, इसलिए दूर रहे। समूह के साथ चलना नहीं और समूह के साथ खड़े नहीं रहना, ऐसा डॉक्टर चन्दुभाई ने कहा है। इस कारण से चन्दुभाई लोगों को कहते हैं आहार देकर निकाल जाओ.. निकल जाओ.. दुःख लगे। यह तो बनने के काल में बने। आहाहा!

यह शरीर तो धूल का बना हुआ है। आहाहा! अन्दर भगवान अमृत का सागर के समक्ष शरीर की कोई कीमत नहीं है। आहाहा! शरीर में रोग हो या निरोग हो, दोनों समान चीज़ है। आत्मा के लिये कुछ भी लाभ-अलाभ नहीं है। आहाहा! समझ में आया? बहुत लोग वहाँ द्रव्यदृष्टि प्रकाश लेने आते हैं। परन्तु भाई! समाप्त हो गये हैं, थोड़े हैं, अब किसी को देना नहीं है। इसलिए किसी को आना नहीं। द्रव्यदृष्टि प्रकाश लेने कोई अन्दर आ जाते हैं। साधारण व्यक्ति तो अन्दर आ जाते हैं, द्रव्यदृष्टि प्रकाश दो। भाई का है न? सोगानी का है न? अब रहे भी नहीं है। अब तो पैंतीस रहे हैं। थोड़े रहे हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, प्रभु! उस समयसार को मैं समरस (समताभाव) द्वारा सदा पूजता हूँ। आहाहा! ऐसा समयसार यहाँ कहा न? अनाकुल है, अच्युत है, जन्म-मृत्यु-रोगादिरहित है, सहज निर्मल सुखामृतमय है, उस समयसार को मैं समरस (समताभाव)... आहाहा! उसे विकल्प भी नहीं। शुभराग विकल्प भी असमता है, वह विसमभाव है। समभाव तो रागरहित प्रभु स्वयं वीतरागस्वरूप है, तो उसके श्रद्धा-ज्ञान भी वीतरागस्वरूप से प्रगट होते हैं। आहाहा! वह वीतरागस्वरूप से प्रगटें, वह मोक्षमार्ग है। आहाहा! कठिन पड़े, भाई! क्या करे? भगवान की दिव्यध्वनि में यह आया है। आहाहा!

(समताभाव) द्वारा सदा पूजता हूँ। ओहोहो! पंच महाव्रतधारी सन्त ऐसा कहते हैं, मैं कोई पंच महाव्रत पालता हूँ या समिति पालता हूँ, निर्दोष आहार लेता हूँ, वह मैं नहीं हूँ। आहाहा! मैं तो सदा समतारस द्वारा समयसार को-भगवान को पूजता हूँ, वह मैं हूँ, प्रभु! आहाहा! यहाँ तो कहे यह वेष, यह वस्त्र, यह कपड़े छोड़ना, ऐसी क्रिया करना, ऐसा यह करना। वह होता है परन्तु उसके कारण से होता है। उस स्वभाव के लाभ के लिये और स्वभाव के लिये आता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यहाँ यह कहते हैं। मैं समरस (समताभाव) द्वारा सदा पूजता हूँ। यह ६६ वाँ (श्लोक हुआ)।

श्लोक-६७

(इन्द्रवज्रा)

इत्थं निजज्ञेन निजात्म-तत्त्व-मुक्तं पुरा सूत्रकृता विशुद्धम् ।
बुद्ध्वा च यन्मुक्तिमुपैति भव्यस्तद्भावयाम्युत्तमशर्मणेऽहम् ॥६७॥

(वीरछन्द)

आत्मज्ञानयुत सूत्रकार ने जिस निजात्म का किया कथन ।
जिसे जान भवि मुक्ति लहें उत्तम सुख पाने करूँ भजन ॥६७॥

श्लोकार्थः—इस प्रकार पहले निजज्ञ सूत्रकार ने (आत्मज्ञानी सूत्रकर्ता श्रीमद्-
भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने) जिस निजात्मतत्त्व का वर्णन किया और जिसे जानकर
भव्य जीव, मुक्ति को प्राप्त करते हैं, उस निजात्मतत्त्व को उत्तमसुख की प्राप्ति के हेतु
मैं भाता हूँ ॥६७॥

श्लोक-६७ पर प्रवचन

६७वाँ श्लोक ।

इत्थं निजज्ञेन निजात्म-तत्त्व-मुक्तं पुरा सूत्रकृता विशुद्धम् ।
बुद्ध्वा च यन्मुक्तिमुपैति भव्यस्तद्भावयाम्युत्तमशर्मणेऽहम् ॥६७॥

श्लोकार्थः—इस प्रकार पहले निजज्ञ सूत्रकार ने (आत्मज्ञानी सूत्रकर्ता श्रीमद्-
भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने)... आहाहा! एक मुनि ने दूसरे मुनि को जान लिया । कोई
कहे कि छद्मस्थ नहीं जान सकता । (तो) ऐसा नहीं है । आत्मज्ञानी थे, ऐसा जान लिया ।
आहाहा! आत्मा में ताकत है । मध्यस्थ होकर देखे तो सामनेवाले की दृष्टि और सामनेवाले
का हृदय बराबर जान सकते हैं । यहाँ पंचम काल के मुनि छद्मस्थ हैं । वे कुन्दकुन्दाचार्यदेव
(टीकाकार ने) ११०० वर्ष पहले हुए, ये टीकाकार ९०० वर्ष पहले । वे (इनसे) ११००
वर्ष पहले हुए । ये कहते हैं कि आहाहा!

निजज्ञ सूत्रकार ने... जो आत्मज्ञानी हैं, ऐसे सूत्रकार। महाव्रतधारी कुन्दकुन्दाचार्य की बात करते हैं। आहाहा! पंचम काल के मुनि कुन्दकुन्दाचार्य (टीकाकार से) ११०० वर्ष पहले हो गये हैं। उनका हृदय जान लिया। उनके शब्द सुनकर और शास्त्र जानकर (कहते हैं)। उनको 'निजज्ञ' ऐसा कहा। वे कौन हैं? कि निजज्ञ हैं। वे तो निज को जाननेवाले हैं। आहाहा! निजज्ञ हैं। भगवान ऐसा कहते हैं कि मुझे जाननेवाले हैं ऐसा भी नहीं। वे तो निजज्ञ हैं। अपने निजस्वरूप को जाननेवाले हैं। ऐसे सूत्रकार ने (आत्मज्ञानी सूत्रकर्ता श्रीमद्-भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने) जिस निजात्मतत्त्व का वर्णन किया.. आहाहा!

जिस प्रकार से निजात्मतत्त्व... निज आत्मभगवान तत्त्व, उसे सूत्रकार ने जो वर्णन किया और जिसे जानकर... आहाहा! भव्य जीव,... उसे जिस प्रकार से कहा है, उस प्रकार से जानकर.. जिसे जानकर... ऐसा आया न? जिस निजात्मतत्त्व का वर्णन किया और जिसे जानकर भव्य जीव, मुक्ति को प्राप्त करते हैं,... आहाहा! पंचम काल के मुनि ऐसा कहते हैं। नग्न-दिगम्बर मुनि, केवलज्ञानी के पथानुगामी हैं। आहाहा! बीच में एक वैमानिक आदि का भव मिले, वह धर्मशाला है। देश में जाना हो तो एक दिन में अधिक तो पन्द्रह कोस कटें, वहाँ धर्मशाला होवे तो रुकना पड़े परन्तु सबेरे कोई पाँच कोस चले। ऐसे यहाँ पंचम काल में अवतार हो गया है। यहाँ सर्वज्ञपना है नहीं तो हमारे देव में धर्मशालारूप से थोड़ा रहने का है। आहाहा! और वहाँ से निकलकर हमारा पन्थ पूरा होगा। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु!

मुक्ति को प्राप्त करते हैं,... वे तो मुक्ति प्राप्त करते ही हैं, परन्तु उसने जो 'आत्म समयसार' कहा, उस आत्मा को जाननेवाले भी मुक्ति को प्राप्त करते हैं। भले वर्तमान में मुक्ति है नहीं, एकाध भव वैमानिक में जाना पड़े। (तो भी मुक्ति को पाते ही हैं)। आहाहा! उस निजात्मतत्त्व को उत्तमसुख की प्राप्ति के हेतु... उस निजात्मतत्त्व को उत्तम सुख की प्राप्ति के लिये मैं भाता हूँ। मैं उसकी भक्ति करता हूँ। आहाहा! माला में एक के बाद एक गिने, वैसे मैं तो आत्मा की माला गिनता हूँ। मैं ध्रुव चिदानन्द आत्मा... आहाहा! उसकी माला मैं गिनता हूँ। आहाहा! दुनिया से सब अलग लगे। दुनिया बाहर के व्यवहार में इतनी अधिक पड़ी है कि मूल चीज़ पूरी रह गयी। आहाहा! जिसकी पहिचान करके वेदन होना चाहिए, वह रह गयी और ऊपर की सब बातें... आहाहा! इसलिए यह कहते हैं, उत्तमसुख की प्राप्ति के हेतु मैं भाता हूँ। यह ६७ वाँ श्लोक हुआ।

श्लोक-६८

(वसन्ततिलका)

आद्यन्त-मुक्त-मनघं परमात्म-तत्त्वं,
निर्द्वन्द्वमक्षयविशालवरप्रबोधम् ।
तद्भावना-परिणतो भुवि भव्य-लोकः,
सिद्धिं प्रयाति भवसम्भवदुःखदूराम् ॥६८॥

(वीरछन्द)

आदि-अन्त से रहित अनघ निर्द्वन्द्व महा अक्षय बुधरूप ।
जो भवि उसकी करें भावना, सिद्धि लहें भव दुःख से दूर ॥६८ ॥

श्लोकार्थः—परमात्मतत्त्व आदि-अन्तरहित है, दोषरहित है, निर्द्वन्द्व है और अक्षय विशाल उत्तम ज्ञानस्वरूप है । जगत में जो भव्यजन उसकी भावनारूप परिणामित होते हैं, वे भवजनित दुःखों से दूर ऐसी सिद्धि को प्राप्त करते हैं ॥६८ ॥

श्लोक-६८ पर प्रवचन

६८ वाँ श्लोक -

आद्यन्त-मुक्त-मनघं परमात्म-तत्त्वं,
निर्द्वन्द्वमक्षयविशालवरप्रबोधम् ।
तद्भावना-परिणतो भुवि भव्य-लोकः,
सिद्धिं प्रयाति भवसम्भवदुःखदूराम् ॥६८॥

श्लोकार्थः— परमात्मतत्त्व... भगवान् आत्मा परमात्मतत्त्व आदि-अन्तरहित है,... जिसकी शुरुआत है नहीं, जिसका अन्त है नहीं, ऐसा अनादि-अनन्त आत्मा आदि-अन्तरहित है । आहाहा ! आदि नहीं, अन्त नहीं । दोषरहित है,... प्रभु में किसी प्रकार का दोष नहीं है । आहाहा ! यह 'गीता' में आता है कि भक्तों को कष्ट पड़े और ऐसे राक्षस बहुत

जन्में तो मुक्ति में से भी ईश्वर को अवतार लेना पड़ता है। यहाँ कहते हैं ऐसा नहीं है। हम मुक्ति को पाकर वहाँ रहनेवाले हैं। आहाहा!

दोषरहित है,... यहाँ से निकलकर संसार में आना, भव धारण करना, दुनिया के परोपकार के लिये भव धारण करना, यह भी नहीं है। आहाहा! भव की भावना, वही मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! दुनिया के परोपकार के लिये मेरा एकाध अवतार होगा तो ठीक है, ऐसा भी यहाँ नहीं है। आहाहा!

निर्द्वन्द्व है... निर्द्वन्द्व। जिसमें द्वैतपना नहीं। निर्द्वन्द्व ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक.. ज्ञायक.. परमपारिणामिकस्वभावभाव निर्द्वन्द्व / द्वैतपने के द्वन्द्वरहित है। आहाहा! ऐसा भगवान। **और अक्षय विशाल उत्तम ज्ञानस्वरूप है।** भगवान कैसा है? अक्षय, जिसका ज्ञान क्षय न हो; और विशाल है। तीन काल, तीन लोक को जाननेवाला है और **उत्तम ज्ञानस्वरूप...** ऐसे उत्तम ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा अन्दर है। आहाहा! **जगत में जो भव्यजन...** जो योग्य प्राणी। **उसकी भावनारूप परिणमित होते हैं,...** आहाहा! ध्रुवस्वभाव भगवान आत्मा की भावना। पहले आ गया था कि आत्मा चार आवरणवाला है, तथापि पंचमभाव की भावनावाला है। यह आ गया। पहले आ गया है। आवरणसहित का अर्थ, आवरण तो निमित्त की अपेक्षा से। परन्तु उसकी भावना वह क्षायिक, क्षयोपशम, उपशमभाव है, वे अन्दर में नहीं परन्तु उन क्षायिक, क्षयोपशमभाव से मुक्ति होती है। आहाहा! उनकी भावनारूप परिणमित। वह भावना अर्थात् यह। शुद्ध ध्रुव चैतन्य का दर्शन, उसका ज्ञान, उसमें रमणता—ऐसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भावना में परिणमता है। जो कोई **उसकी भावनारूप परिणमित होते हैं, वे भवजनित दुःखों से दूर...** ओहोहो! **भवजनित दुःखों से दूर ऐसी सिद्धि को प्राप्त करते हैं।** वह प्राणी सिद्धि को प्राप्त करता है। आहाहा! ऐसी बात है। ६८वाँ श्लोक हुआ न?

गाथा-४४

णिग्गंथो णीरागो णिस्सल्लो सयलदोसणिम्मुक्को ।
णिक्कामो णिक्कोहो णिम्माणो णिम्मदो अप्पा ॥४४॥

निर्ग्रन्थो नीरागो निःशल्यः सकलदोषनिर्मुक्तः ।

निःकामो निःक्रोधो निर्मानो निर्मदः आत्मा ॥४४॥

अत्रापि शुद्धजीवस्वरूपमुक्तम् । बाह्याभ्यन्तरचतुर्विंशतिपरिग्रहपरित्यागलक्षणत्वा-
न्निर्ग्रन्थः । सकलमोहरागद्वेषात्मकचेतनकर्माभावान्नीरागः । निदानमायामिथ्याशल्यत्रया-
भावान्निःशल्यः । शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धजीवास्तिकायस्य द्रव्यभावनोकर्माभावात्
सकलदोष-निर्मुक्तः । शुद्धनिश्चयनयेन निजपरमतत्त्वेऽपि वाञ्छाभावान्निःकामः ।
निश्चयनयेन प्रशस्ताप्रशस्तसमस्त-द्रव्यपरिणतेरभावान्निःक्रोधः । निश्चयनयेन सदा
परमसमरसीभावात्मकत्वान्निर्मानः । निश्चयनयेन निःशेषतोऽन्तर्मुखत्वान्निर्मदः ।
उक्तप्रकारविशुद्धसहजसिद्धनित्यनिरावरणनिजकारणसमयसार-स्वरूपमुपादेयमिति ।

तथा चोक्तं श्रीमदमृतचन्द्रसूरिभिःह

(मंदाक्रान्ता)

इत्युच्छेदात्पर-परिणतेः कर्तृ-कर्मादि-भेद-
भ्रान्तिध्वन्सादपि च सुचिराल्लब्धशुद्धात्मतत्त्वः ।
सञ्चिन्मात्रे महसि विशदे मूर्च्छितश्चेतनोऽयं,
स्थास्यत्युद्यत्सहज-महिमा सर्वदा मुक्त एव ॥

तथाहि ह

निर्ग्रन्थ है, निराग है, निःशल्य, जीव अमान है ।

सब दोष रहित, अक्रोध, निर्मद जीव यह निष्काम है ॥४४॥

अन्वयार्थः—[आत्मा] आत्मा [निर्ग्रन्थः] निर्ग्रन्थ [नीरागः] निराग,
[निःशल्यः] निःशल्य, [सकलदोषनिर्मुक्त] सर्वदोषविमुक्त, [निःकामः] निष्काम,
[निःक्रोधः] निःक्रोध, [निर्मानः] निर्मान और [निर्मदः] निर्मद है ।

टीका:—यहाँ (इस गाथा में) भी शुद्धजीव का स्वरूप कहा है।

शुद्ध जीवास्तिकाय बाह्य-अभ्यंतर चौबीस^१ परिग्रह के परित्यागस्वरूप होने से निर्ग्रन्थ है; सकल मोह-राग-द्वेषात्मक चेतनकर्म के अभाव के कारण निराग है; निदान, माया और मिथ्यात्व—इन तीन शक्तियों के अभाव के कारण निःशक्त है; शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध जीवास्तिकाय को द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म का अभाव होने के कारण सर्वदोषविमुक्त है; शुद्ध निश्चयनय से निज परमतत्त्व की भी वांछा न होने से निष्काम है; निश्चयनय से प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त परद्रव्यपरिणति का अभाव होने के कारण निःक्रोध है; निश्चयनय से सदा परमसमरसीभावस्वरूप होने के कारण निर्मान है; निश्चयनय से निःशेषरूप से अन्तर्मुख होने के कारण निर्मद है। उक्तप्रकार का (ऊपर कहे हुए प्रकार का), विशुद्ध सहजसिद्ध नित्य-निरावरण निज कारणसमयसार का स्वरूप उपादेय है।

इसी प्रकार (आचार्यदेव) श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि ने (श्री प्रवचनसार की टीका में ८वें श्लोक द्वारा) कहा है कि—

(वीरछन्द)

इसप्रकार जिस भव्यजीव ने पर-परिणति का नाश किया ।
कर्ता कर्म आदि भेदों की भ्रमणा का भी नाश किया ॥
शुद्ध आत्मा को पाकर चिन्मात्र तेज में लीन रहें ।
स्वाभाविक माहात्म्य प्रकाशस्वरूप सर्वदा मुक्त रहे ॥

श्लोकार्थः—इस प्रकार परपरिणति के उच्छेद द्वारा (अर्थात् परद्रव्यरूप परिणमन के नाश द्वारा) तथा कर्ता, कर्म आदि भेद होने की जो भ्रान्ति उसके भी नाश द्वारा अन्त में जिसने शुद्ध आत्मतत्त्व को उपलब्ध किया है—ऐसा यह आत्मा, चैतन्यमात्ररूप विशद (निर्मल) तेज में लीन रहता हुआ, अपनी सहज (स्वाभाविक) महिमा के प्रकाशमानरूप से सर्वदा मुक्त ही रहेगा ।

१. क्षेत्र, मकान, चाँदी, सोना, धन, धान्य, दासी, दास, वस्त्र और बर्तन — ऐसा दसप्रकार का बाह्यपरिग्रह है; एक मिथ्यात्व, चार कषाय और नौ नोकषाय — ऐसा चौदहप्रकार का अभ्यन्तरपरिग्रह है।

गाथा - ४४ पर प्रवचन

णिगंगंथो णीरागो णिस्सल्लो सयलदोसणिम्मुक्को ।

णिक्कामो णिक्कोहो णिम्माणो णिम्मदो अप्पा ॥४४॥

भगवान् अन्दर आत्मा कैसा है ? निर्ग्रन्थ है, निराग है, निःशल्य है। जीव... आहाहा! अमान है - जिसे मान नहीं। सब दोषरहित अक्रोध, निर्मल। आहाहा! पहले अमान आया, तथापि मदरहित है। सब चीज के मदरहित है। यह जीव निष्काम है, यह त्रिकाली भगवान् आत्मा अन्दर निष्काम है। इसे भगवान् अमृतचन्द्राचार्य ने जगत के समक्ष खुल्ला करके रखा है। आहाहा! कि यह आत्मा है, प्रभु! तुझे रुचे तो ठीक आहाहा! यह कहीं मेरे हाथ में भी नहीं है। तेरी चीज तुझमें है और अन्तर्मुख होना, बहिर्मुख से हटना... आहाहा! वह तो तेरा कार्य तुझमें है। हम तो मात्र कहते हैं। आहाहा!

टीका:— यहाँ (इस गाथा में) भी शुद्धजीव का स्वरूप कहा है।

शुद्ध जीवास्तिकाय... जीवास्तिकाय क्यों कहा ? अकेला जीव क्यों नहीं कहा ? कि जैन परमेश्वर के अतिरिक्त जीव को असंख्य प्रदेशी किसी ने कहा नहीं। किसी ने देखा नहीं, किसी ने जाना नहीं। सर्वज्ञ वीतराग के अतिरिक्त आत्मा असंख्य प्रदेशी है, ऐसा किसी ने पूरी दुनिया में तीन काल में भगवान् के अतिरिक्त किसी ने कहा नहीं। आहाहा! इस कारण कहते हैं कि **शुद्ध जीवास्तिकाय...** अकेला शुद्ध जीव नहीं लिया। अस्तिकाय। असंख्य प्रदेश साथ में हैं। आहाहा! वस्तु असंख्य प्रदेशी है। उसे अस्तिकाय (कहते हैं)। **बाह्य-अभ्यन्तर चौबीस परिग्रह के...** बाह्य दस प्रकार के परिग्रह, नीचे लिखा है न ? और चौदह अभ्यन्तर, वे नीचे (फुटनोट में) लिखे हैं। **परित्यागस्वरूप होने से...** बाह्य और अन्तर परिग्रह से रहित होने से भगवान् **निर्ग्रन्थ है;**... निर्ग्रन्थदशा प्राप्त हो, वह दूसरी (बात) है। वस्तु ही निर्ग्रन्थ है। वस्तु निर्ग्रन्थ है तो उसमें से निर्ग्रन्थदशा प्राप्त होती है। आहाहा! वस्त्र बिना, नग्नपने की जो नग्नदशा और अभ्यन्तर में विकल्परहित की नग्नदशा; वह निर्ग्रन्थरूप आत्मा है, उसमें से निर्ग्रन्थदशा होती है। यदि आत्मा निर्ग्रन्थ न हो तो निर्ग्रन्थदशा कहा से आवे। इसलिए **निर्ग्रन्थ...** अर्थ में पहले कहा। विशेष कहेंगे...

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)